प्रवेशांक

शोधामृत

कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की सहकर्मी समीक्षित अर्धवार्षिक मूल्यांकित शोध पत्रिका

Online ISSN-3048-9296
Vol.-1; issue-1 (Jan-Jun) 2024
Page No.-22-25
©2024 Shodhaamrit (Online)
www.shodhamrit.gyanvividha.com

डॉ. प्रदीप कुमार

सहायक प्राध्यापक, संस्कृत-विभाग
श्रीमती अरुणा असफ अली
राजकीय स्नातकोत्तर
महाविद्यालय,
कालका (हरियाणा)

Corresponding Author :

डॉ. प्रदीप कुमार

सहायक प्राध्यापक, संस्कृत-विभाग
श्रीमती अरुणा असफ अली
राजकीय स्नातकोत्तर
महाविद्यालय,
कालका (हरियाणा)

महाभारतकालीन अर्थव्यवस्था का स्वरूप

महाभारत में अर्थ का बहुत महत्त्व प्रतिपादित हुआ है, क्योंकि जीवन निर्वाह हेतु भरणपोषण की समस्याओं का निदान अर्थ - के बिना नहीं हो सकता है तथा दान भी अर्थ पर ही आधारित होता है।[1] अतःअर्थ से कामनाओं की पूर्ति होने से जीवन के समस्त प्रयोजन सिद्ध हो जाते हैं,[2] क्योंकि धन द्वारा जीवनीय विविध भोग सम्भव होते हैं, जो सांसारिक सुख का एकमात्र आधार है [3]। वामदेव के अनुसार अर्थ के कारण ही धर्म का संवर्धन होता है[4] और अर्थ की रक्षा हेतु धर्म ही कारण होता है।[5] निःसन्देह धर्म तथा अर्थ परस्पर अन्योन्य पूरक हैं, क्योंकि आचार्य चाणक्य ने भी धर्म का मूल अर्थ को ही माना है। अतः वर्गद्वय का नीति पर्वक संरक्षण आवश्यक है[6], क्योंकि धर्म तथा अर्थ का त्याग से बुद्धि का नाश होता है।[7]

अतः विद्वानों को नीतिपूर्वक बुद्धि को युक्त कर दोनों में समन्वय स्थापित करना चाहिये[8] जिससे विद्वान् संसार में समस्त ऐषणाओं को पूर्व कर प्रतिष्ठित होता है।[9] राजा को भी अर्थ सिद्धि हेतु इच्छा करनी चाहिये[10], क्योंकि अर्थ विषयक चिन्तन ही राष्ट्र को ऊँचा बनाता है।[11] अतः अर्थ की सिद्धि से ही राजा को महद् फल की प्राप्ति होती है,[12] क्योंकि अर्थ ही समस्त कर्मों की मर्यादा के प्रतिपालन में उत्तम साधन माना गया है। अर्थ के बिना धर्म काम भी निरर्थक होते हैं,[13] क्योंकि धर्म और काम अर्थ के अवयव है जिसके सिद्ध होने पर धर्म और अर्थ स्वतः ही सिद्धि देते है [14]। महर्षि वेदव्यास अर्थ को धर्मरूपी धन कहते है [15]। यह भी सत्य ही है कि धनाढ्य व्यक्ति वित्त के बल पर धर्म पालन करता हुआ दुर्लभ इच्छाओं की पूर्ती कर सकता है [16]। जिससे वह उत्तम मनुष्यों द्वारा भी सत्कृत होता है [17]। अतः वित्त सम्पन्न व्यक्ति का सभी सम्मान करते हैं। यहाँ तक कि अनासक्ति युक्त पुरुष भी जीवन की इच्छा हेतु धन की अभिलाषा रखते है[18], क्योंकि महर्षि वेदव्यास का कथन है कि धन की ऐषणा संसार में आस्तिक तथा नास्तिक समस्त पुरुषों को होती है तथा उसकी महत्ता और उसका सदुपयोग ही प्रधान ज्ञान का कारण माना जाता है। प्रायः जगत् में कोई ही अज्ञानी व्यक्ति होगा जिसे धन की लिप्सा न हो [19]। अतः धन सबको प्रिय लगता है [20]। प्रत्येक उचित

उपाय से वित्त का संग्रह करना चाहिये[21], क्योंकि धन रहित व्यक्ति की इच्छाएँ पूर्ण नहीं हो सकती है [22]।

अतः अर्थयुक्त व्यक्ति ही ऐहिक कामनाओं का सेवन करता हुआ जीवन के सम्पूर्ण भोगों को पूर्ण कर लेता[23], क्योंकि संचित धन से ही मनुष्य शुभ कर्मों को करता हुआ धर्म, काम तथा स्वर्गिक सुख भोगता रहता है। जिससे लोकयात्रा का भी सम्यक्तः निर्वाह होता है [24]। इनके अतिरिक्त भी महर्षि वेदव्यास धन से जीवन में हर्ष का सम्वर्धन, क्रोध पर नियन्त्रण जिससे शत्रुओं पर विजय प्राप्त करना, शास्त्रों का श्रवण और उनका अध्ययन इत्यादि कार्य सरलता से सिद्ध हो जाते हैं[25], किन्तु अर्थहीन व्यक्ति की बुद्धि उचित रूप से कार्य नहीं करती है। जिससे उसकी समस्त सांसारिक क्रियाएं असफल हो जाती है [26]। महर्षि वेदव्यास धनहींन की स्थिति को पतित के समान माना है[27], क्योंकि धनाढ्य पुरुष पर वित्त की विशेष कृपा से ही समस्त मित्र तथा भाई बन्धु उसके निकट रहते है इतना ही नहीं वह समाज में वही पण्डित भी माना जाता है [28]। यही कारण है कि धन से कुल प्रतिष्ठित होते हैं तथा धन से ही धर्म संवर्धित होता है। निर्धन के लिये तो लोक तथा परलोक दोनों ही कष्टप्रद होते हैं[29], किन्तु धन का नाश होने पर भी भाईबन्धु तथा मित्र भी - अपमानित करने लगते हैं।[30] वेदव्यास की मान्यता है कि निर्धनता से प्राण त्यागना उत्तम है [31]। अतः शान्तिपर्व में धनीहीन को ही कृश कहा है[32], क्योंकि धन से ही इहलोक तथा परलोक पर विजय पाता है, किन्तु निर्धन के लिये यह सम्भव नहीं होता है [33]। निस्संदेह उचित रूपेण उपार्जित धन को वैदिक कार्यों में लगाना चाहिये[34], क्योंकि ईश्वर ने यज्ञ के लिये ही धन सृजना की है और उसी यज्ञ में सर्व आहूत कर देना ही धन का सदुपयोग होता है [35]। जिससे वह शोकशून्य हो जाता है [36]। ब्राह्मण को वित्तदान कर पुण्यलोकों का पुण्य अर्जित करना चाहिये [37] वैश्य को समुद्र पर्यन्त धन का व्यापार करना चाहिये [38] महाभारतकार के अनुसार वैश्य तथा शूद्र धन से ही आपत्तियों को पार कर सकते है [39]। निस्सन्देह वैश्य धन से ही सुशोभित होता है [40]। अतः शान्तिपर्व में अन्य अनेक स्थानों पर धन को यज्ञ में ही लगाने का तथ्य सामने आया है। धन के लिये संसार प्रत्येक मनुष्य ललायति रहना चाहिये। निस्सन्देह धन ही धर्म का प्रथम सोपान है[41], क्योंकि प्राचीन महद्भारत की महान् की संस्कृति भी महान् यज्ञों में दान की महिमा गाते है [42]। महर्षि वेदव्यास के मत में दान देने योग्य व्यक्ति को दी दिया गया दान सार्थक होता है, किन्तु जो मनुष्य अनाधिकारी को दान देता है उसे भ्रूणहत्या के समान दोष लगता है [43]। धन कभी किसी भी व्यक्ति के पास स्थिर नहीं रहता है। इसलिये बुद्धिमान को श्रद्धायुक्त होकर यज्ञ तथा दान देना चाहिये यही धन का उत्तम प्रयोग है[44] तथा दान अपात्र को न देकर सुपात्र को देकर उसकी महत्ता को वर्धित करना चाहिये [45] राजा को भी धन का संग्रह करना चाहिये[46] क्योंकि धन के , बल पर ही धर्म, अर्थ तथा काम की सिद्धि होती है [47]। तथा धर्म के इच्छुक व्यक्ति को उचित साधन से उपार्जित धन का ही संचय करना चाहिये [48]। संचित धन को राजा को उपकारी पुरुषों में वितरित कर देना चाहिये तथा दुष्टों के धन को अपहृत कर राज्य के विस्तार में लगाना चाहिये। ऐसा करने वाला राजा कुबेर समान कहलाता है[49], किन्तु शत्रु के आक्रमण की आशंका से धन के अपहरण की सम्भावना हो तो राजा को धन ब्राह्मणों को दान कर देना चाहिये। जिससे दुर्जय लोकों की प्राप्ति होती रहे [50]। निस्सन्देह राजा को प्रत्येक दृष्टि से धन का सम्वर्धन करना चाहिये [51]। जिससे वह प्रजा की समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकता है [52]। महर्षि वेदव्यास की मान्यता है कि धनाढ्य पुरुष ही राष्ट्र के प्रमुख अंग होते है तथा वे ही समस्त प्राणियों में प्रधान होते है[53] और धनी पुरुष ही प्रजा की रक्षा में सक्षम होते हैं [54]। अतः जो राजा प्रजा के धन की रक्षा करता है वह उस प्रजा के लिये परमात्मा समम् माना जाता है [55]। यदि राजा धनहींन हो जाये तो उसके मन्त्री भी उसे कष्ट देने लगते हैं[56] तथा अन्य जन भी उपहास करते हैं। अतः राजा के जीवन में धन महती आवश्यकता होती है। उसके बिना उसका राजकार्य सम्भव नहीं हो सकता है। शान्तिपर्व में राजा के लिये धन का अनिवार्यत्व उल्लिखित हुआ है। वह वस्तुतः राजधर्म में वित्त के महत्त्व को दर्शाता है [57]। वेदव्यास का मत है कि इस लोक में धन की प्राप्ति बहुत ही दुर्लभता से होती है और प्राप्ति के अनन्तर उसकी रक्षा में भी कठिनाई होती है तथा य दि नष्ट हो जाये तो बहुत दुख होता है [58]। महर्षि वेदव्यास ने धनाढ्य गृह में जन्म पूर्वजन्मों के संचित पुण्यों का फल मानते हैं[59], क्योंकि यह भी धन के कारण ही होता है कि वैभवशाली घर में धनार्जित पुण्यों से जन्म होता है। अतः धन के प्रभाव कर्मफलों के भोगों में लिप्त मनुष्य प्रकृति के नियमों का उल्लंघन नहीं करते हैं [60]। उपर्युक्त वर्णन से यही स्पष्ट होता है कि संसार का कोई प्राणी ऐसा नहीं है जिसे धन की इच्छा न हो तथा न ही अर्थ के बिना लौकिक जीवन का निर्वाह होना ही सम्भव होता है। अतः जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में धन की आवश्यकता समस्त वर्ग के व्यक्तियों को होती है।

सन्दर्भ सूची:-

1. शान्तिपर्व 59.54, अभुतानां च भरणं भृतानांचान्ववेक्षणम्। अर्थस्यकाले प्रदानं चव्यसनेष्वप्रसङ्गिता॥
2. वही81.15, अर्थहेतोर्हि कामाद्वाद्वारा बीभत्सयापिवा। आत्मना प्राप्तमैश्वर्यमन्यत्रप्रतिपादितम्॥
3. वही 81.15, अर्थहेतोर्हि कामाद्वाद्वारा बीभत्सयापिवा। आत्मना प्राप्तमैश्वर्यमन्यत्रप्रतिपादितम्॥
4. वही 92.7, अर्थसिद्धेः परं धर्मं मन्यते योमहीपतिः। ऋतां च कुरुते बुद्धिं सधर्मेण विरोचते॥
5. वही 109.19, अर्थस्य रक्षाणार्थय परेषां धर्मकारणात्॥
6. वही 15.35, चातुर्वर्ण्यप्रमोदाय सुनीतिनयनाय च। दण्डो विधात्रा विहितो धर्मार्थौ भुवि रक्षितुम्॥
7. वही 123.14, सधर्मार्थपरित्यागत्प्रज्ञानाशमिहार्छति॥
8. वही 134.1, प्रत्यक्षावेव धर्मार्थौं क्षत्रियस्य विजानतः॥
9. वही 145.9, सत्वं संतानवानद्य पुत्रवानपि चद्विज। तत्स्वदेहे दया त्यक्त्वाधर्मार्थौ परिगृह्य वै॥
10. वही 120.8, अर्थकामः शिखां राजाकुर्याद्धर्मध्वजोपमाम्॥
11. वही 115.18, अर्थचिन्तापरा यस्य स राज्यफलमश्नुते॥
12. वही 138.17, अर्थयुक्ति समालोक्यसमुमद्विन्दते फलम्॥
13. शान्तिपर्व 167.12, अर्थ इत्येव सर्वेषांकर्मणामव्यतिक्रमः। न ऋतेऽर्थेनवर्तेते धर्मकामाविति धर्मकामाविति श्रुतिः॥
14. वही 167.14, अर्थस्यावयवावेतौ धर्मकामावितिश्रुतिः। अर्थसिद्धया हिनिर्वृत्तावुभावेतौ भविष्यतः॥
15. वही 321.45, धनस्य यस्य राजतो भयं न चास्ति चैरतः। मृतं च यन्न मुंचति समर्जस्व तद्धनम्॥
16. वही 167.13, विजयीह्यर्थवान्धर्ममाराधयितुमुत्तमम्। कामंच चरितुं शक्तो दुष्प्रापमकृतात्मभिः॥
17. वही 167.15, उद्धृतार्थं हि पुरुषं विश्ञिष्टतरयोनयः। ब्रह्माणमिव भूतानि सततं पर्युपासते॥
18. वही 167.16,18, जटाजिनधरा दान्ताः पङ्कदिग्धाजितेन्द्रियाः। मुण्डा निस्तन्वश्चापिवसन्त्यर्थार्थिनः पृथक्॥ काषायवसनाश्चान्ये श्मश्रुलाह्रीसुसंवृताः। विद्वांसश्चैवशान्ताश्च मुक्ताः सर्वपरिग्रहैः॥ अर्थार्थिन सन्ति केचिदपरेस्वर्गकाङ्क्षिणः। कुलप्रत्यागमाश्चैकेस्वं स्वं मार्ग मनुष्ठिताः॥
19. वही 167.19, आस्तिका नास्तिकाश्चैव नियताः संयमेपरे। अप्रज्ञानं तमोभूतं प्रज्ञानं तुप्रकाशता॥
20. वही 123,23, अस्मिंस्तु वै सुसंवृत्ते दुर्लभेपरमप्रिये॥
21. वही 167.22, आसीनश्च शयानश्च विचरन्नपि च स्थितः। अर्थयोगं दृढ़ं कुर्याद्योगैरुच्चावचैरपि॥
22. वही 167.25, अनर्थस्य न कामोऽस्ति तथार्थोऽधर्मिणः कुतः॥
23. वही 112.31, अर्थयुक्तानि चात्यर्थंकामान्सर्वाश्च सेवते॥
24. शान्तिपर्व 8.16,17, अर्थेभ्यो हि विवृद्धेभ्यः संभृतेभ्यस्ततस्ततः। क्रियाः सर्वाः प्रवर्तन्ते पर्वतेभ्यः इवापगाः॥ अर्थाद् धर्मश्च कामश्च स्वर्गश्चैव नराधिप। प्राणयात्रापि लोकस्य विना ह्यर्थं न सिद्धयति॥
25. वही 8.21, धर्मः काश्च स्वर्गश्च हर्षः क्रोधः श्रुतं दमः। अर्थादेतानि सर्वाणि प्रवर्तन्ते नराधिप॥
26. वही 8.18, अर्थेन हि विहीनस्य पुरुषस्याल्पमेधसः। व्युच्छिद्यन्ते क्रियाः सर्वा ग्रीष्मे कुसरितो यथा॥
27. वही 8.15, पतितः शोच्यते राजन् निर्धनशपि शोच्यते। विशेषं नाधिगच्छामि पतितस्याधनस्य च॥
28. वही 8.19, यस्यार्थास्तस्य मित्राणि यस्यार्थास्तस्य बान्धवः। यस्यार्था स पुमाँल्लोके यस्यार्थाः सः च पण्डितः॥
29. वही 8.22, धनात् कुलं प्रभवति धनाद् धर्म प्रवर्तते। नाधनस्यास्त्ययं लोके न परः पुरुषोत्तम॥
30. वही 177.34, धननाशोऽधिकं दुःखं मन्ये सर्वमहत्तरम्। ज्ञातयो ह्यवमन्यनते मित्राणि च धनच्युतम्॥
31. वही 180.6, आर्तः स पतितः क्रुद्धस्त्यक्त्वात्मानमथाब्रवतीत्। मरिष्याम्यधनस्येह जीवितार्थो न विद्यते॥
32. वही 8.24, यः कृशार्थः कृशगवः कृशभृत्यः कृशातिथिः। स वै राजन् कृशो नाम न शरीरकृशः॥
33. वही 190.43, धनने जयते लोकावुभौ परमिमं तथा। सत्यं च धर्म वचनं यथा नास्त्यधनस्तथा॥
34. वही 8.29, इति देवा व्यवसिता वेदवादाश्च शाश्वताः। अधीयतेऽध्यापयन्ते यजन्ते याजयन्ति च॥ कृत्स्नं तदेव तच्छेभ्यो यदप्याददतेऽन्यतः। न पश्यामोऽनपहतं धनंकिंचित्क्वचिद् वयम्॥
35. वही 20.10, यज्ञाय सृष्टानि धनानि धात्रा यष्टोदिष्टः पुरुषो रक्षिता च। तस्मात् सर्वं यज्ञ वोपयोज्यं धनं ततोऽनन्मर व कामः॥

36. वही 21.14, हरिश्चन्द्रः पार्थिवेन्द्रः श्रुतस्ते यज्ञैरिष्ट्वा पुण्यभाग् वीतशोकः। ऋद्धया शक्रं योऽजयन्मानुषः संस्तस्माद् यज्ञे सर्वेवोपयोज्यम्॥
37. वही 234.18, आत्रेयश्चन्द्रदमयोरर्हतोर्विविधंधनम्। दत्तवा लोकान्ययौ धीमाननन्तान्समहीपतिः॥
38. वही298.28, वणिग्यथा समुद्राद्वै यथार्थं लभतेधनम्।
39. वही 165.20, धनेन वैश्यः शूद्रश्च मन्त्रैर्होमैश्च वै द्विजः॥
40. वही 293.21,धनेन वैश्यः शूद्रस्तु नित्यंदाक्ष्येण शोभते॥
41. वही 26.17, धर्ममन्ये वृत्तमन्ये धनमीहन्ति चापरे॥
42. वही 29.109, तद् धनमपर्यन्तमश्वमेधे महामखे। शशबिन्दुर्महाराज ब्राह्मणेभ्यः समार्पयत्॥
43. वही 209., अनर्हते यद् ददाति न ददाति यदर्हते। अनर्हार्हापरिज्ञानाद् दानधर्मोऽपि दुष्करः॥
44. वही 26.27, तस्माद् बुद्ध्यन्ति पुरुषा न हि तत् कस्यचिद् ध्रुवम्। श्रद्दधानस्ततो लोके दद्याच्चैव यजेत च॥
45. वही 26.31, लब्धानामपि वित्तानां बोद्धव्यौ द्वावतिक्रमौ। अपात्रे प्रतिपत्तिश्च पात्रे चाप्रतिपादनम्॥
46. वही 57.41, राजानं प्रथमं विन्देत्ततो भार्यां ततोधनम्।
47. शान्तिपर्व 59,122, शक्रश्च धनमक्षय्यं प्रादात्तस्ययुधिष्ठिर। रुक्मं चापि महामेरुः स्वयंकनकपर्वतः॥
48. वही 292.5, यक्षराक्षसभर्ता च भगवान्नरवाहनः। धर्मे चार्थे च कामे च समर्थं प्रददौ धनम्॥ न धर्मार्थी नृशंसेन कर्मणाधनमर्जयेत्। शक्तितः सर्वकार्याणिकुर्यान्नर्द्धिमनुस्मरेत्॥
49. वही 68.47, श्रियं ददातिकस्मैचित्कस्माच्चिदपकर्षति। तदावैश्रवणो राजँल्लोके भवति भूमिपः॥
50. वही 71.21, परचक्राभियानेन यदि ते स्याद्धनक्षयः। अथ साम्नैव लिप्सेथा धनमब्राह्मणेषु यत्॥
51. वही 81.27, धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वपक्षोद्भावनंशुभम्। ज्ञातीनामविनाशः स्याद्यथाकृष्ण तथा कुरु॥
52. वही 188.29, धनिनः पूजयेन्नित्यं यानाच्छादनभोजनैः। वक्तव्याश्चानुगृह्णीध्वं पूजाः सह मयेति ह॥
53. वही 88.30, अङ्गमेतन्महद्राज्ञां धनिनो नाम भारत। ककुदं सर्वभूतानां धनस्थो नात्र संशयः॥
54. वही 88.31, प्राज्ञः शूरो धनस्थश्च स्वामी धार्मिक वच। तपस्वी सत्यवादी चबुद्धिमांश्चाभिरक्षति॥
55. वही 97.8, यो भूतानि धनज्यानाद्वधात्क्लेशाच्चरक्षति। दस्युभ्यः प्राणदानात्स धनदःसुखदो विराट्॥
56. वही 104.1, धार्मिकोऽर्थानसंप्राप्य राजामात्यैःप्रबाधितः। च्युतः कोशाच्च दण्डाच्च सुखमिच्छन्कथं चरेत्॥
57. शान्तिपर्व 228.78, अग्निदाहेन चौरैर्वा राजभिर्वा हृतंधनम्। दृष्ट्वा द्वेषात्प्राहसन्तसुहृत्संभाविता ह्यपि॥
58. वही 120.335,6
59. वही 177.26, ईहा धनस्य न सुखा लब्ध्वा चिन्ता चभूयसी। लब्धनाशो यथा मृत्युर्लब्धंभवति वा न वा॥
60. वही 331.19, अपरे धनधान्यानि भोगांश्चपितृसंचितान्। विपुलानभिजायन्तेलब्धास्तैरेव मङ्गलैः॥